[2017] 1 उम. नि. प. 142

प्रभू चावला

बनाम

राजस्थान राज्य

5 सितंबर, 2016

न्यायमूर्ति जे. चेलामेश्वर, न्यायमूर्ति शिव कीर्ति सिंह और न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 482 और धारा 397 – उच्च न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता – उच्च न्यायालय को धारा 482 के अधीन अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए न्याय के प्रयोजनों को पूरा करने और किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने की असाधारण शक्ति है, चूंकि धारा 397 अंतर्वर्ती आदेश से भिन्न सभी आदेशों को लागू होती है अतः धारा 482 के अधीन अंतर्निहित शक्ति की उपलब्धता को सीमित करना अन्यायसंगत होगा ।

प्रभू चावला और जगदीश उपासने और अन्य की अपीलों पर विचार करते हुए इन दोनों दांडिक अपीलों में तारीख 2 अप्रैल, 2009 के ऐसे एक ही आदेश की चुनौती दी गई है जिसके द्वारा जोधपुर स्थित राजस्थान उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अपीलार्थियों द्वारा प्रस्तुत की गई याचिकाओं को खारिज किया गया । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के अधीन उपचार की उपलब्धता दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन याचिका को संधार्य नहीं बनाएगा, संजय भंडारी बनाम राजस्थान राज्य वाले मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए याचिकाओं का संधार्य न होना अभिनिर्धारित किया । इन सभी विषयों पर विचार करते हुए, 5 जुलाई, 2013 को खंड न्यायपीठ ने उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश को धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य वाले मामले में कथित विधि के विरुद्ध पाया । उस मामले में खंड न्यायपीठ ने विधि की इस प्रतिपादना से सहमति व्यक्त की कि स्वयं दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के अधीन दांडिक पुनरीक्षण के अनुकल्पी उपचार की उपलब्धता दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन किसी आवेदन को खारिज करने का अच्छा आधार नहीं

बनता । किंतु यह ध्यान दिया कि मोहित **उर्फ** सोनू और एक अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य वाले मामले में इस न्यायालय की पश्चात्वर्ती खंडः न्यायपीठ के निर्णय में प्रकटतः इसके प्रतिकूल यह अभिनिर्धारित किया गया कि जब चुनौतीधीन कोई आदेश अंतर्वर्ती प्रकृति का नहीं है और उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण अधिकारिता के अधीन है तो उच्च न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लेने का वर्जन होना चाहिए । ऐसे विरोध को ध्यान में रखते हुए, इन मामलों को वृहत्तर न्यायपीठ के निर्देश के लिए माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष रखे जाने का निदेश दिया गया और इस प्रकार इस न्यायपीठ के समक्ष ये मामले विरोध को दूर करने के लिए हैं । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति से संबंधित मुद्दे के बारे में आगे किसी विधि को स्पष्ट करने का कोई प्रयास करने की अपेक्षा नहीं है । हम मात्र यह दोहराते हैं कि धारा 482 यह उल्लेख करते हुए सर्वोपरि खंड से आरंभ होती है : "इस संहिता की कोई बात उच्च न्यायालय की ऐसे आदेश देने की अंतर्निहित शक्ति को सीमित या प्रभावित करने वाली न समझी जाएगी जैसे इस संहिता के अधीन किसी आदेश को प्रभावी करने के लिए या किसी न्यायालय की कार्यवाही का दुरुपयोग निवारित करने के लिए या किसी अन्य प्रकार से न्याय के उद्देश्यों की प्राप्ति सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हो ।" सुतराम, न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर के शब्दों में, इस संपूर्ण अधिकारिता के प्रयोग पर कोई पूर्ण रोक नहीं लगाया जा सकता जहां "न्याय की प्रक्रिया का दुरुपयोग या अन्य असाधारण स्थिति न्यायालय की अधिकारिता पैदा करते हैं । परिसीमा आत्मसंयम से अधिक कुछ नहीं है ।" हम समर्थन में अतिरिक्त कारण बताते हैं । चूंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 अंतर्वर्ती आदेश से भिन्न सभी आदेशों के विरुद्ध लागू होते हैं इसलिए प्रतिकूल मत दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अंतर्निहित शक्तियों की उपलब्धता को सीमित करेगा । केवल ऐसे छोटे अंतर्वर्ती आदेशों की स्थिति में ऐसी अधिकारिता पूर्णतः अनापेक्षित और अवांछनीय होगी । परिणामतः, न्यायालय यह कहने के लिए मजबूर है कि मोहित **उर्फ** सोनू और एक अन्य वाले मामले में विशेषकर पैरा 28 में खंड न्यायपीठ ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 में उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों की बाबत विधि का सही उल्लेख नहीं किया है । हम

ससम्मान इससे असहमति व्यक्त करते हैं । उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश को धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड और अन्य पूर्व मामलों जिन्हें उद्धृत किया गया था, में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि का पालन करना चाहिए किंतु 2006 की एकल न्यायपीठ दांडिक प्रकीर्ण याचिका सं. 289 जो 2009 की विशेष इजाजत याचिका सं. 4744 से उद्भूत संबद्ध दांडिक अपील में आक्षेपित है, में तारीख 5 फरवरी, 2009 को एक अन्य विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित संजय भंडारी वाले मामले में उस न्यायालय के निर्णय के अधिमान में गलत ढंग से उपेक्षित किया गया । परिणामतः प्रभू चावला द्वारा फाइल की गई और दूसरी जगदीश उपासने और अन्य द्वारा फाइल की गई दोनों अपीलें अनुज्ञात की गईं हैं । राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 2 अप्रैल, 2009 का आक्षेपित एक जैसे आदेश को अपास्त किया गया और मामलों को उपरोक्त स्पष्ट किए गए विधि के आलोक में और विधि के अनुसार निपटान के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन याचिकाओं की नए सिरे से सुनवाई के लिए उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया गया । क्योंकि मामले काफी समय से लंबित हैं इसीलिए उच्च न्यायालय से अधिमानतः छह माह के भीतर मामलों की सुनवाई करने और यथाशीघ्र विनिश्चित करने का अनुरोध किया जाता है । (पैरा 6, 7 और 8)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2013]	(2013) 7 एस. सी. सी. 789 : **मोहित** उर्फ **सोनू और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** ;	3
[2009]	(2009) 2 एस. सी. सी. 370 : **धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य** ;	
[2009]	2009 (1) क्रिमिनल ला रिपोर्ट (राजस्थान) 282 : **संजय भंडारी** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	2
[2008]	(2008) 3 एस. सी. सी. 574 : **सोम मित्तल** बनाम **कर्नाटक राज्य** ;	5
[1980]	(1980) 1 एस. सी. सी. 43 : **राज कपूर और अन्य** बनाम **राज्य और अन्य** ;	5

[1977] (1977) 4 एस. सी. सी. 551 :
मधु लिमये बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 5

[1960] ए. आई. आर. 1960 एस. सी. 866 :
आर. पी. कपूर बनाम **पंजाब राज्य** । 5

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : **2016 की दांडिक अपील सं. 842 के साथ 2016 की दांडिक अपील सं. 844 और 845-846.**

2007 की एकल न्यायपीठ दांडिक प्रकीर्ण याचिका सं. 296 में राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर द्वारा पारित तारीख 2 अप्रैल, 2009 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री पी. के. गोस्वामी, ज्येष्ठ अधिवक्ता, अरुनभ चौधरी, जयंत मोहन, वैभव तोमर, कर्मा दोर्जी (मैसर्स कोक की ओर से), राजशेखर राव, सुश्री चतन्या पुरी और डी. महेश बाबू, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री शिव मंगल शर्मा, अटर्नी जनरल, सारांश कुमार, ब्रजेश पांडेय, राम नरेश यादव, सुश्री रुचि कोहली और मिलिंद कुमार, अधिवक्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति शिव कीर्ति सिंह ने दिया ।

न्या. सिंह – इजाजत दी गई ।

2. सर्वप्रथम हम प्रभू चावला और जगदीश उपासने और अन्य की अपीलों पर विचार करते हैं क्योंकि इन दोनों दांडिक अपीलों में तारीख 2 अप्रैल, 2009 के ऐसे एक ही आदेश की चुनौती दी गई है जिसके द्वारा जोधपुर स्थित राजस्थान उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अपीलार्थियों द्वारा प्रस्तुत की गई याचिकाओं को खारिज किया गया । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के अधीन उपचार की उपलब्धता दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन याचिका को संधार्य नहीं बनाएगा, **संजय भंडारी**

बनाम **राजस्थान राज्य**[1] (अन्य संबद्ध अपील में आक्षेपित) वाले मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए याचिकाओं का संधार्य न होना अभिनिर्धारित किया ।

3. विशेष इजाजत याचिका प्रक्रम पर इन सभी विषयों पर विचार करते हुए, 5 जुलाई, 2013 को खंड न्यायपीठ ने उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश को **धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य**[2] वाले मामले में कथित विधि के विरुद्ध पाया । उस मामले में खंड न्यायपीठ ने विधि की इस प्रतिपादना से सहमति व्यक्त की कि स्वयं दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के अधीन दांडिक पुनरीक्षण के अनुकल्पी उपचार की उपलब्धता दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन किसी आवेदन को खारिज करने का अच्छा आधार नहीं बनता । किंतु यह ध्यान दिया कि **मोहित** उर्फ **सोनू और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य**[3] वाले मामले में इस न्यायालय की पश्चात्वर्ती खंड न्यायपीठ के निर्णय में प्रकटतः इसके प्रतिकूल अभिनिर्धारित किया गया कि जब चुनौतीधीन कोई आदेश अंतर्वर्ती प्रकृति का नहीं है और उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण अधिकारिता के अधीन है तो उच्च न्यायालय की अंतर्निहित अधिकारिता का अवलंब लेने का वर्जन होना चाहिए । ऐसे विरोध को ध्यान में रखते हुए, इन मामलों को वृहत्तर न्यायपीठ के निर्देश के लिए माननीय मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष रखे जाने का निदेश दिया गया और इस प्रकार इस न्यायपीठ के समक्ष ये मामले विरोध को दूर करने के लिए हमारे समक्ष हैं ।

4. इन अपीलों के तथ्य हमें निरुद्ध नहीं कर सकते क्योंकि हमारी विचारित राय में आक्षेपित आदेश में राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत विधि के प्रतिकूल है अतः, मामलों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय को उपलब्ध अंतर्निहित शक्तियों की व्याप्ति के भीतर गुणागुण पर नए सिरे से विचार करने के लिए उच्च न्यायालय को वापस प्रतिप्रेषित करना होगा । यह उल्लेख करना पर्याप्त होगा कि इन दोनों अपीलों में, उच्च न्यायालय के समक्ष प्रकीर्ण याचिकाएं 2006 की परिवाद सं. 1669 में जोधपुर के विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट सं. 3 द्वारा पारित तारीख 30 नवंबर, 2006 के उस आदेश से उद्भूत हुईं जिसके

---

[1] 2009 (1) क्रिमिनल ला रिपोर्ट (राजस्थान) 282.

[2] (2009) 2 एस. सी. सी. 370.

[3] (2013) 7 एस. सी. सी. 789.

द्वारा उसने भारतीय दंड संहिता की धारा 228क के अधीन अपीलार्थियों के विरुद्ध संज्ञान लिया और मामले में आगे कार्यवाहियों का सामना करने के लिए जमानतीय वारंट के माध्यम से उन्हें समन किया ।

5. अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् वरिष्ठ अधिवक्ता श्री पी. के. गोस्वामी ने **धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत का समर्थन किया । उन्होंने यह इंगित किया कि इस निर्णय के पैरा 6 में न्यायमूर्ति एस. बी. सिन्हा ने यह निष्कर्ष निकालते हुए **आर. पी. कपूर** बनाम **पंजाब राज्य**[1] और **सोम मित्तल** बनाम **कर्नाटक राज्य**[2] वाले मामले सहित इस न्यायालय के कई पूर्व निर्णयों पर ध्यान दिया कि "केवल इस कारण कि पुनरीक्षण याचिका संधार्य है, स्वयं यह ..... संहिता की धारा 482 के अधीन किसी आवेदन को ग्रहण करने के लिए वर्जन गठित नहीं करेगा ।" श्री गोस्वामी ने **राज कपूर और अन्य** बनाम **राज्य और अन्य**[3] वाले मामले में खंड न्यायपीठ की ओर से न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर के निर्णय का ठोस अवलंब भी लिया । **मधु लिमये** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[4] वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ का अवलंब लेते हुए और उसमें के पैरा 10 में न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर द्वारा अपनी अमिट शैली में स्पष्ट किए गए विधि का उल्लेख करते हुए विचार व्यक्त किया । पैरा 10 इस प्रकार है :–

> "10. प्रथम प्रश्न यह है कि क्या धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति ऐसी दशा में अभिखंडित हो जाती है जिसमें कि धारा 397 के अधीन पुनरीक्षण शक्ति अतिव्याप्ति करती है । धारा 482 के प्रारंभिक शब्द इस दलील का खंडन करते हैं क्योंकि संहिता में ऐसी कोई बात नहीं है और न ही वह धारा 397, धारा 482 की भाषा द्वारा पूर्ण रूप से परिरक्षित अंतर्निहित शक्ति के प्रसार को प्रभावित करती है । तथापि, विधि की इस शाखा में एक सामान्य सिद्धांत व्याप्त होता है जबकि कोई विनिर्दिष्ट उपबंध किया जाता है, अंतर्निहित शक्ति के प्रति सुगमतापूर्वक आश्रय उचित नहीं है जब तक कि विवश्यक परिस्थितियां विद्यमान न हों । ऐसी बात नहीं है कि यहां अधिकारिता का अभाव है, किंतु यह कि अंतर्निहित शक्ति ऐसे

---

[1] ए. आई. आर. 1960 एस. सी. 866.
[2] (2008) 3 एस. सी. सी. 574.
[3] (1980) 1 एस. सी. सी. 43.
[4] (1977) 4 एस. सी. सी. 551.

क्षेत्रों को आक्रांत करने वाली नहीं होनी चाहिए जो कि उसी संहिता के अधीन विनिर्दिष्ट शक्ति के लिए पृथक् रखी गई है । मधु लिमये **बनाम** महाराष्ट्र राज्य [(1977) 4 एस. सी. सी. 551] वाले मामले में इस न्यायालय ने विस्तारपूर्वक, और यदि मैं अत्यंत आदर सहित कहूं तो विधि के संबंध का सही तौर पर विचार-विमर्श तथा चित्रण समूचे रूप से किया है । जबकि यह सही है कि धारा 482 व्यापक धारा है उसे चाहिए कि यह उसी संहिता में लिखित विधिक निषेधों का प्रत्याख्यान न करें, जैसाकि उदाहरणार्थ धारा 397(2) में लिखित है । इन दोनों उपबंधों में कुछ स्थितियों में हो सकता है कि प्रत्यक्ष मतभेद उत्पन्न हो तथा उसका सुचारु हल निकल आए –

> धारा 397 की उपधारा (2) में उपबंधित वर्जन केवल उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण शक्ति के प्रयोग में ही प्रवर्तित होता है जिसका अर्थ यह है कि उच्च न्यायालय को अंतर्वर्ती आदेश के संबंध में पुनरीक्षण की कोई शक्ति प्राप्त नहीं है । ऊपर प्रतिपादित अन्य सिद्धांतों में से एक सिद्धांत के अनुसार अंतर्निहित शक्ति लागू होगी चूंकि व्यथित पक्षकार की व्यथा का परितोष करने के लिए संहिता में कोई अन्य उपबंध नहीं है । परंतु फिर यदि आक्षेपित आदेश पूर्णतः 1898 की संहिता के अधीन उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण शक्ति के प्रयोग में है, तो उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग करने से मना कर देगा, परंतु यदि आक्षेपित आदेश स्पष्ट रूप से ऐसी स्थिति पैदा कर देता है जो न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग है या न्याय के उद्देश्य को प्राप्त करने के प्रयोजन के लिए उच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप पूर्णतः आवश्यक है, तो धारा 397(2) में अंतर्विष्ट कोई बात उच्च न्यायालय द्वारा अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग को सीमित या प्रभावित नहीं करेगी । परंतु ऐसे मामले थोड़े और यदाकदा होते हैं । उच्च न्यायालय को अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग बहुत कम करना चाहिए । ऐसा एक मामला अवैध रूप से या तंग करने के लिए प्रारंभ की गई दांडिक कार्यवाही या अधिकारिता-विहीन कार्यवाही को अभिखंडित करने की वांछनीयता हो सकती है ।"

संक्षेप में, अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग पर पूर्ण वर्जन नहीं है जहां कि न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग अथवा अन्य असाधारण स्थिति

न्यायालय की अधिकारिता को उत्तेजित करती है । अधिकारिता आत्मनिर्बंधित है, न कि उससे कुछ अधिक । विधि की नीति स्पष्ट है, अर्थात् यह कि अंतर्वर्ती आदेश जो कि शुद्ध तथा सामान्य हो, उच्च न्यायालय के समक्ष नहीं ले जाए जाने चाहिए क्योंकि इससे परिणामतः अनावश्यक मुकदमेबाजी और विलंब होता है । दूसरे छोर पर अंतिम आदेश स्पष्ट रूप से अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग में विचार करने योग्य है यदि न्यायालय के समक्ष गंभीर अन्याय आता है । इन दोनों के बीच तृतीय प्रतिफल (टर्शयम क्विड) जैसा कि न्यायाधिपति ऊंटवालिया द्वारा उदाहरणार्थ बताया गया है, जहां कहीं अंतर्वर्ती आदेश का स्वरूप शुद्ध अंतर्वर्ती आदेश से अधिक हो और अंतिम व्ययन से कम हो । वर्तमान मामला उस कोटि के अधीन आता है जिसमें कि अभियुक्तों ने न्यायालय के आदेश द्वारा तंग किए जाने का परिवाद रखा है । क्या हम यह कथन कर सकते हैं कि इस तृतीय प्रवर्ग में अंतर्निहित शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है ? न्यायाधिपति ऊंटवालिया के शब्दों में –

> "इसका उत्तर स्पष्ट है कि वर्जन न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए और/या न्याय के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्रवृत्त नहीं होगा । व्यथित पक्षकार द्वारा फाइल किए गए पिटीशन का लेबल महत्वहीन है । उच्च न्यायालय मामले की परीक्षा कर सकता है । निःसंदेह प्रस्तुत मामला 1973 की संहिता की धारा 482 के अनुसार उच्च न्यायालय की शक्ति के प्रयोग के लिए है, चाहे इस बात को मान लिया जाए, यद्यपि इसे माना नहीं गया है कि उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण शक्ति को लागू करना अननुज्ञेय है ।"

इसलिए मेरे मन में यह बात स्पष्ट है कि हमारे समक्ष मामले की जो स्थिति है उसमें अंतर्निहित शक्ति का उपहास नहीं किया । दोनों ओर से काउंसेलों ने वैधता के लिए हमारी तीव्रग्राहिता के प्रति अपनी संवेदनशील प्रवृत्ति दर्शित करते हुए समुचित रूप से इस बारे में सहमति व्यक्त की कि न्यायालय के अधीन आदेश की प्रति के औपचारिक रूप से फाइल किए जाने पर इस न्यायालय को अपना समय नष्ट नहीं करना चाहिए । हमारा निष्कर्ष दोनों ओर से विद्यमान काउंसेलों द्वारा दी गई रियायत से सहमत है कि मात्र इस कारण कि आदेश की प्रति पेश नहीं की गई है, हालांकि वह न्यायालय के

अभिलेख में विद्यमान है, मेरे लिए यह संभव नहीं है कि मैं यह अभिनिर्धारित करूं कि समस्त पुनरीक्षण शक्ति निष्फल हो जाती है और अंतर्निहित शक्ति का बहिष्कार हो जाता है ।

6. हमारे विचारित मतानुसार, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति से संबंधित मुद्दे के बारे में आगे किसी विधि को स्पष्ट करने का कोई प्रयास करने की अपेक्षा नहीं है । हम मात्र यह दोहराते हैं कि धारा 482 यह उल्लेख करते हुए सर्वोपरि खंड से आरंभ होती है : "इस संहिता की कोई बात उच्च न्यायालय की ऐसे आदेश देने की अन्तर्निहित शक्ति को सीमित या प्रभावित करने वाली न समझी जाएगी जैसे इस संहिता के अधीन किसी आदेश को प्रभावी करने के लिए या किसी न्यायालय की कार्यवाही का दुरुपयोग निवारित करने के लिए या किसी अन्य प्रकार से न्याय के उद्देश्यों की प्राप्ति सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक हो ।" सुतराम, न्यायमूर्ति कृष्णा अय्यर के शब्दों में, इस संपूर्ण अधिकारिता के प्रयोग पर कोई पूर्ण रोक नहीं लगाया जा सकता जहां "न्याय की प्रक्रिया का दुरुपयोग या अन्य असाधारण स्थिति न्यायालय की अधिकारिता पैदा करते हैं । परिसीमा आत्मसंयम से अधिक कुछ नहीं है।" हम समर्थन में अतिरिक्त कारण बताते हैं । चूंकि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 अंतर्वर्ती आदेश से भिन्न सभी आदेशों के विरुद्ध लागू होते हैं इसलिए प्रतिकूल मत दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अंतर्निहित शक्तियों की उपलब्धता को सीमित करेगा । केवल ऐसे छोटे अंतर्वर्ती आदेशों की स्थिति में ऐसी अधिकारिता पूर्णतः अनापेक्षित और अवांछनीय होगी ।

7. परिणामतः, हम यह कहने के लिए मजबूर हैं कि **मोहित** उर्फ **सोनू और एक अन्य** (उपरोक्त) वाले मामले में विशेषकर पैरा 28 में खंड न्यायपीठ ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 में उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों की बाबत विधि का सही उल्लेख नहीं किया है । हम ससम्मान इससे असहमति व्यक्त करते हैं ।

8. हमारी विचारित राय में, उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश को **धारीवाल टोबैको प्रोडक्ट्स लिमिटेड और अन्य** (उपरोक्त) पूर्व मामलों, जिन्हें उद्धृत किया गया था, में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि का पालन करना चाहिए किंतु 2006 की एकल न्यायपीठ दांडिक प्रकीर्ण याचिका सं. 289 जो 2009 की विशेष इजाजत याचिका सं. 4744

से उद्भूत संबद्ध दांडिक अपील में आक्षेपित है, में तारीख 5 फरवरी, 2009 को एक अन्य विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पारित **संजय भंडारी** (उपरोक्त) वाले मामले में उस न्यायालय के निर्णय के अधिमान में गलत ढंग से उपेक्षित किया गया । परिणामतः प्रभू चावला द्वारा फाइल की गई और दूसरी जगदीश उपासने और अन्य द्वारा फाइल की गई दोनों अपीलें अनुज्ञात की गईं हैं । राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 2 अप्रैल, 2009 का आक्षेपित एक जैसे आदेश को अपास्त किया गया और मामलों को उपरोक्त स्पष्ट किए गए विधि के आलोक में और विधि के अनुसार निपटान के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन याचिकाओं की नए सिरे से सुनवाई के लिए उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित किया गया । क्योंकि मामले काफी समय से लंबित हैं इसीलिए उच्च न्यायालय से अधिमानतः छह माह के भीतर मामलों की सुनवाई करने और यथाशीघ्र विनिश्चित करने का अनुरोध किया जाता है ।

9. तीसरी अपीलें जोधपुर स्थित राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 5 फरवरी, 2009 के आक्षेपित आदेश का अवलंब लिया जाता है और अन्य दो अपीलों में आक्षेपित तारीख 2 अप्रैल, 2009 का आदेश पारित करते समय पालन किया जाता है । चूंकि उस आदेश को ये अपीलें अनुज्ञात करते समय अपास्त किया गया अतः इस अपील में आक्षेपित आदेश को भी उन्हीं कारणों से और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 की व्याप्ति और परिधि की बाबत हमारे द्वारा व्यक्त किए गए मत के अनुसार अपास्त किया जाता है । तद्नुसार यह अपील भी मंजूर की जाती है और अन्य दो अपीलों के अनुसार उन्हीं निदेशों के साथ आक्षेपित आदेश अपास्त किया जाता है ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

पा.